नियमसार, व्यवहारचारित्र अधिकार। इसमें अरिहन्त भगवान का अधिकार है। अरिहन्त... अरिहन्त भी पर है न, इसलिए व्यवहार में रखा है। व्यवहारचारित्र का अधिकार है। पंच परमेष्ठी भी परद्रव्य है; इसलिए व्यवहार है रखा है।

मुमुक्षु : वे तो शुद्ध हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध है, परन्तु पर हैं न? भले शुद्ध हैं, परन्तु इससे (-आत्मा से) तो पर है न? उनका लक्ष्य करने से तो राग होता है; उनका आश्रय करने से कहीं धर्म नहीं

होता। इसलिए व्यवहार पराश्रित है, निश्चय स्वाश्रित है; इसलिए व्यवहारचारित्र में यह अधिकार रखा है। श्लोक ९६ हो गया है। (अब), ९७ वाँ श्लोक।

स्मर-करि-मृगराज: पुण्य-कञ्जाह्विराज:,
सकल-गुण-समाज: सर्वकल्पावनीज:।
स जयति जिनराज: प्रास्त-दु:कर्मबीज:,
पद-नुत-सुर-राजस्त्यक्त-सन्सार-भूज: ।।९७।।

भुज अर्थात् क्या हुआ वापस? भुज-पृथ्वी में जन्मना। (भू अर्थात् पृथ्वी, ज अर्थात् जन्मना)। आहाहा!

स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव टीकाकार हैं। इससे चौबीस तीर्थंकरों में पद्मप्रभ को याद किया है। टीकाकार 'पद्मप्रभ' है न? उन चौबीस तीर्थंकरों में 'पद्मप्रभ' स्वयं के नाम से हैं, उन्हें याद करके स्तुति की है। समझ में आया?

(श्रोताओं से) थोड़े नजदीक आओ तो पीछे जगह हो। आज रविवार है न, इसलिए आज लड़कों को शामिल होना होता है न आज। भावनगर और राजकोट और...

क्या कहा? कहते हैं, पद्मप्रभ भगवान ऐसे है अर्थात् कि मैं आत्मा ऐसा हूँ। **जो कामदेवरूपी हाथी को (मारने के लिये) सिंह हैं,... स्मर** है न? **स्मर** अर्थात् कामदेव। इच्छा - पाँच इन्द्रिय के विषयों के ओर की झुकाव की वृत्ति। ऐसा काम; **करि** अर्थात् हाथी। **मृगराज:** अर्थात् सिंह। **स्मर-करि-मृगराज:** कैसे हैं प्रभु? **कामदेवरूपी हाथी को (मारने के लिये) सिंह हैं,....**

मुमुक्षु : यह तो... होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे कहते हैं कि मारना-ऐसा नहीं बोलना। शब्दों को क्या... णमो अरिहंताणं। बड़ी चर्चा आयी है न? भगवान को फिर दुश्मन कैसे? दुश्मन को मारना - यह जैन को शोभा नहीं देता, ये शब्द लिखना शोभा नहीं देता, ऐसा और आया। ऐसे के ऐसे। शब्द के साथ क्या है?

कामदेवरूपी हाथी... करि आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा ने अतीन्द्रिय आनन्द के आश्रय से पाँच इन्द्रियों के विषय की वृत्तिया जो विकल्प हैं, उन्हें

जिसने नष्ट कर दिया है, ऐसे वे सिंह हैं। भगवान आत्मा भी वैसा ही है। ऐसे स्वयं अपना नाम डालकर कहा है। पाँच इन्द्रियों के विषय की ओर की वृत्तियाँ, उनका व्यय करने के लिए। यहाँ तो उपदेश के वाक्य हैं न? वास्तव में तो व्यय करता नहीं। स्वरूप में स्थिर होता है तो विकार उत्पन्न नहीं होता, उसे व्यय / नाश करे - ऐसा कहा जाता है। परन्तु क्या हो? भाषा से बातें करना (और) वस्तु भाषातीत। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **कामदेवरूपी हाथी को (मारने के लिये) सिंह हैं,...** ऐसे भगवान आत्मा भी अनीन्द्रिय। यह आत्मा अनीन्द्रियस्वरूप है। इसके आश्रय से इन्द्रिय की वृत्तियाँ नष्ट होती है, ऐसा आत्मा है। ऐसे पद्मप्रभ भगवान हैं और ऐसा ही यह आत्मा है। समझ में आया? **जो पुण्यरूपी कमल को (विकसित करने के लिये) भानु हैं,...** लो। **पुण्यकञ्ज** है न? पानी में उत्पन्न हुआ कमल। परमात्मा कैसे है? **पुण्यरूपी कमल को (विकसित करने के लिये) भानु हैं,...** पहला गुण लिया और दूसरा पुण्य लिया। बाहर की ऋद्धि बतायी। पुण्यरूपी कमल को विकसित करने के लिए सूर्य हैं। ऐसे भगवान आत्मा भी, उसका आश्रय लेने से इन्द्रियों की वृत्तियाँ तो नष्ट होती है, परन्तु उसके आश्रय में कमी रह जाए तो उसे ऐसे पुण्य विकल्प होते हैं कि जो तीर्थंकरपने को भी प्राप्त हो, ऐसा यह आत्मा है। कहो, समझ में आया?

जो सर्व गुणों के समाज (समुदाय) हैं,... लो। **सकल-गुण-समाजः** तीसरा पद है। ९७ श्लोक। भगवान सकल गुण का समाज है। लो, समाज। ऐसे भगवान आत्मा अनन्त गुण का समाज है। अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु स्वयं ही समाज है। उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। ऐसे परमात्मा को प्रगटरूप है। सर्व गुण की पर्याय प्रगट समाज है, समुदाय है। **सर्वकल्पावनीजः जो सर्व कल्पित (चिन्तित) देनेवाले कल्पवृक्ष हैं,... कल्पावनीजः** अवनीज शब्द है न? वह कल्पवृक्ष। अवनीज पृथ्वी का उत्पन्न हुआ। अवनी अर्थात् पृथ्वी ज अर्थात् उत्पन्न हुआ। कल्पवृक्ष। **सर्वकल्पावनीजः** भगवान त्रिलोकनाथ **सर्व कल्पित (चिन्तित) देनेवाले कल्पवृक्ष हैं,...** ऐसे यह आत्मा भी अनन्त ज्ञान-आनन्द सम्पन्न है। वह **सर्व कल्पित...** अर्थात् एकाग्र हो, तो उसमें सर्व मनोरथ पूर्ण हो, ऐसा यह आत्मा है। बाबूभाई! ऐसा आत्मा है, ऐसा सुना नहीं। यह सब बाहर की लगायी है - भक्ति, पूजा, व्रत, तप। यहाँ थे न? अगास में। एक बार कहा था कि व्रत-नियम करना, वह तुम्हारा अधिकार

है। ऐसा कहा, परन्तु वह सब कर्म का कार्य है। कर्मस्वरूप है, वह आत्मस्वरूप नहीं। ऐसा कहा था। अगास। ऐसे तो कहा, भाई! व्रत और नियम, वह तो सब विकल्प है और वह विकल्प वास्तव में तो कर्म का कर्तव्य है। वह जीव का स्वरूप है ही नहीं। यहाँ कल्पवृक्ष अर्थात् अपने आनन्दादि की परिणति को प्रगट करे, ऐसा आत्मा है। ऐसा कल्पवृक्ष है। **जिन्होंने स जयति जिनराज: जिन्होंने दुष्ट कर्म के बीज को नष्ट किया है,...** पीछे का पद लिया **प्रास्त-दु:कर्मबीज:, प्रास्त-दु:कर्मबीज:,..** जिसने कर्म के बीज को तो जलाकर नाश किया है। आहाहा! **जिनके चरण में सुरेन्द्र नमते हैं... पद-नुत-सुर** ऐसा। **पद-नुत-सुर जिनके चरण में... नुत** अर्थात् नमते हैं। **नुत-सुर-राज** देवों के इन्द्र भी जिनके चरणकमल में नमते हैं। ऐसे पद्मप्रभ भगवान, यहाँ अरिहन्त पद की व्याख्या है न? इसलिए उसमें उन्हें स्मरण किया है। ऐसा स्वरूप ही मेरा है, ऐसा भी साथ ही याद किया है।

और जिन्होंने संसाररूपी वृक्ष का त्याग किया है,... लो। **त्यक्त-सन्सार-भूज:** चौथा पद है न? **त्यक्त-सन्सार-भूज:** भू, पृथ्वी में उत्पन्न हुए वृक्ष। यह संसाररूपी वृक्ष, इसका जिसने नाश किया है। भगवान आत्मा संसार का नाश करनेवाला ही स्वभाव है। संसार को उत्पन्न करे, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। नाश करने का स्वभाव है, वह भी व्यवहार है। परमार्थ से आत्मा राग के नाश का कर्ता भी नहीं। संसार विकार है, उसका नाश कर्ता कहना, वह भी परमार्थ नहीं। आत्मा का आनन्दस्वभाव, उसमें अन्तर में एकाकार होने से संसार अर्थात् राग की उत्पत्ति नहीं होती, उसे संसार का नाश किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! शब्द के अर्थानुसार किस नय का कथन है, यह न समझ में आये तो गड़बड़ करे। सिद्धान्त में धवल में तो ऐसा कहा, कोई भी सूत्र, कोई भी अर्थ, नय वाक्य बिना नहीं हो सकते। नय बिना नहीं हो सकते। किसी भी शास्त्र का मूल शब्द या उसका अर्थ नय वाक्य है। व्यवहारनय का वाक्य है या निश्चयनय का वाक्य है? यह इसे जानना चाहिए। जाने बिना अर्थ करे तो अर्थ का अनर्थ हो जाए।

संसाररूपी वृक्ष का त्याग किया है,... लो। और उसमें ऐसा कहते हैं कि राग का त्याग कर्ता आत्मा परमार्थ से नहीं है; नाममात्र है। यहाँ कहते हैं, नाश हो गया है न? स्वभाव परिपूर्ण अखण्ड अभेद का आश्रय लेकर, उससे उत्पन्न हुई मोक्षदशा, अरिहन्त भी

मोक्ष ही है। प्रसिद्ध मोक्ष है, ऐसा कहेंगे। प्रसिद्ध जिनका मोक्ष है, बाद में कहेंगे। उन्हें मोक्षप्रसिद्ध है। भावमोक्ष हो गया है। अरिहन्त को भावमोक्ष सब गुण पर्याय में परिणम गये हैं। कहते हैं **संसाररूपी वृक्ष का त्याग किया है, वे जिनराज (श्री पद्मप्रभ भगवान) जयवन्त हैं।** वह भगवान तो अभी मोक्ष में पधारे हैं परन्तु उन्हें मानो ऐसे समवसरण में विराजते हों, ऐसे याद करके आत्मा भी मानो पूरा विद्यमान विराजमान हो, ऐसा करके आत्मा की स्तुति में पद्मप्रभ भगवान की स्तुति, वर्तमान तीर्थंकररूप ही हों, उन्हें वन्दन किया है। वरना वे तो मोक्ष में हैं, सिद्ध हैं। सौ इन्द्र नमते हैं, चरण में नमते हैं कहाँ? पाठ में तो ऐसा आया। चरण में सुरेन्द्र नमते हैं। भगवान तो सिद्ध हुए उन्हें कहाँ अभी (इन्द्र है) ? परन्तु वे समवसरण में थे, तब जो विद्यमान है, उन तीर्थंकर को याद करके, मैं भी पूरा तत्त्व विद्यमान हूँ। नहीं, ऐसा नहीं। जैसे तीर्थंकर अभी नहीं हैं, ऐसा नहीं। साक्षात् विराजते हैं, ऐसा करके स्तुति करता हूँ। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा ऐसा का ऐसा विद्यमान, वर्तमान ध्रुव, अखण्डानन्द प्रभु है। उसमें मैं एकाग्र होता हूँ, वह मेरी मोक्ष की प्रसिद्धि का कारण है। समझ में आया? आहाहा! यह ९७ श्लोक हुआ। यहाँ तो पाठ ऐसा है न? जयवन्त वर्ते। **स जयति** ऐसा है न? तीसरे पद का। **स जयति** जयवन्त वर्तते हैं, जयवन्त हैं। इन्द्र जिनके चरणों को नमते हैं, ऐसे भगवान जयवन्त हैं। ऐई! आहाहा! भूतकाल में जैसे भगवान थे, वैसे ही वर्तमान में मानो हैं। ऐसे पंचम काल के मुनि, उसमें अनादि का ऐसा का ऐसा हूँ, ऐसा विद्यमान भगवान हूँ, उसकी स्तुति अर्थात् उसे मैं नमता हूँ। बाहर में ऐसे पद्मप्रभ भगवान अरिहन्त पद में थे, उन्हें याद करके नमता हूँ। विकल्प से व्यवहार से। व्यवहारचारित्र है न? यह ९७वाँ कलश हुआ।

श्लोक-९८

(मालिनी)

जित-रतिपति-चापः सर्व-विद्या-प्रदीपः,
परिणत-सुखरूपः पाप-कीनाश-रूपः।
हत-भव-परितापः श्री-पदानम्र-भूपः,
स जयति जितकोपः प्रह्वविद्वत्कलापः।।९८।।

(हरिगीतिका)

जीता जिन्होंने काम शर, विद्या प्रकाशक सर्व हैं।
सुखरूप परिणत, पाप नाशन के लिए यमरूप हैं॥
भवताप नाशक, श्रीपदों में भूपति जिनको नमें।
जो क्रोधजिन विद्वान् जिनको नमें वे जयवंत हैं॥

[श्लोकार्थः—] कामदेव के बाण को जिन्होंने जीत लिया है, सर्व विद्याओं के जो प्रदीप (प्रकाशक) हैं, जिनका स्वरूप सुखरूपप से परिणमित हुआ है, पाप को (मार-डालने के लिये) जो यमरूप हैं, भव के परिताप का जिन्होंने नाश किया है, भूपति जिनके श्रीपद में (महिमायुक्त पुनीत चरणों में) नमते हैं, क्रोध को जिन्होंने जीता है और विद्वानों का समुदाय जिनके आगे नत हो जाता-झुक जाता है, वे (श्री पद्मप्रभनाथ)जयवन्त हैं।

श्लोक-९८ पर प्रवचन

९८ वाँ कलश

जित-रतिपति-चापः सर्व-विद्या-प्रदीपः,
परिणत-सुखरूपः पाप-कीनाश-रूपः।
हत-भव-परितापः श्री-पदानम्र-भूपः,
स जयति जितकोपः प्रह्वविद्वत्कलापः।।९८।।

प्रत्येक में कामदेव आता है। चार में। यह शब्द नया लगता है। हमारे जैसों को संस्कृत न आती हो उन्हें। **पाप-कीनाश-रूपः** अर्थात् यम जैसा। पाप को नाश करने के लिए यम। ९८।

श्लोकार्थ : कामदेव के बाण को जिन्होंने जीत लिया है,... अतीन्द्रिय आत्मा प्रगट किया है। जिसके पाँच इन्द्रिय के विषय की वृत्तियाँ नष्ट हो गयी हैं। पाँच इन्द्रिय के विषय कामबाण, हों! आहाहा! कामदेव के बाण को (जीत लिया है)। आनन्दमूर्ति प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में, जिसे कामदेव के बाण नहीं लगते परन्तु कामदेव को मार डाला है, कहते हैं। आहाहा! जीत लिया है। अनीन्द्रिय भगवान आनन्द का नाथ, उसका अवलम्बन लेकर परसन्मुख की वृत्तियों का जिसने नाश कर डाला है। वह **कामदेव के बाण को जिन्होंने जीत लिया है,... जित-रतिपति-चापः** इस पहले पद का अर्थ है। **जित-रतिपति-चापः** बाण। **चापः** अर्थात् बाण है न? रतिपति का चाप, ऐसा। **रतिपति** अर्थात् कामदेव, उसका **चापः** अर्थात् बाण। उसे जिसने जीता है। **जित-रतिपति-चापः**

सर्व-विद्या-प्रदीपः जो **सर्व विद्याओं के जो प्रदीप (प्रकाशक) हैं,...** केवलज्ञान प्रकाशित है। यद्यपि भगवान तो श्रुतज्ञान प्रकाशते हैं परन्तु उस श्रुतज्ञान में पूरा प्रकाश सब आ जाता है। परसों आया था न? भाई! (श्रावण कृष्ण) एकम्। भगवान हैं, वे भावश्रुत प्रकाशते हैं। भगवान केवलज्ञान प्रकाशते नहीं। धवल में आता है। भावश्रुत प्रकाशते हैं। क्यों? - कि जिसे भावश्रुत होता है, उसे यह वाणी निमित्त है, इसलिए भावश्रुत का प्रकाश है। केवलज्ञान को क्या प्रकाशे? समझ में आया?

सर्व विद्याओं के जो प्रदीप (प्रकाशक) हैं,... सब उस भावश्रुत में प्रकाशते भगवान की वाणी में आने से सब प्रकाश हो जाता है। भावश्रुत में फिर केवलज्ञानी कैसे, वह सब उसमें आ जाता है। समझ में आया? भगवान की दिव्यध्वनि केवलज्ञान को प्रकाशती है, ऐसा नहीं लिया। अर्थकर्ता है। भगवान गणधरदेव सूत्रकर्ता हैं। अर्थकर्ता का अर्थ यह भावश्रुत कहते हैं। द्रव्यश्रुत तो फिर उसकी रचना गणधर करते हैं। आहाहा! **सर्व विद्याओं के जो प्रदीप...** प्र विशेष, दीपक। प्रकाश करनेवाले हैं। लो, प्रदीप! यह नाम आया इसमें। **सर्व विद्याओं के जो प्रकाशक हैं,...** आया इसमें। उसे प्रदीप कहते हैं, ऐसा

कहते हैं। जगत में अनादि की सब विद्याएँ है, उन्हें प्रकाशता है, उसे प्रदीप कहते हैं, ऐसा कहते हैं। पश्चात्?

परिणत-सुखरूप: आहाहा! जिनका स्वरूप **सुखरूप से परिणमित हुआ है,...** अनादि से दु:ख पुण्य-पाप के विकाररूप परिणमता था, वह दु:खरूप से परिणमता था। **जिनका स्वरूप सुखरूप से परिणमित हुआ है,...** सुख मिला है या प्राप्त हुआ है, ऐसा नहीं। **जिनका स्वरूप सुखरूप से परिणमित हुआ है,...** समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव पद्मप्रभ की बात याद करते हैं। जिनकी पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्दरूपी परिणमन हो गया है। आनन्द को प्राप्त होंगे और आनन्द को लेंगे, यह बात यहाँ नहीं है, कहते हैं। वह तो आनन्द की परिणति ही परिणम गयी है। जैसा अतीन्द्रिय आनन्द उनका स्वभाव, वैसी ही परिणति परिणमित हो गयी है। आहाहा!

जिनका स्वरूप सुखरूप से परिणमित हुआ है,... आहाहा! संसार के दु:खरूप जिनका परिणमन परिणमा है, वह परिणमन इस शरीर, वाणी, मन के कारण नहीं है, ऐसा कहते हैं। संसार में भी पुण्य और पाप के विकाररूप से, दु:खरूप से परिणमता है, यह उसकी दशा है, यह उसकी अवस्था है। यह भी एक सुखरूप परिणमे, वह उनकी अवस्था है। लोकालोक को जानते हैं और सबको जानते हैं, इसलिए सुखरूप होते हैं। थोड़े को जाने तो सुख हो, तीन काल को जाने उसे कितना सुख होगा?

मुमुक्षु : ढ़ेर मोढ़े

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटी बात है। पर को जानना वह सुख नहीं है। अन्दर आनन्द की परिणति सुखरूप हो गयी है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में भी धर्म की पहली दशा में सुखरूप आंशिक आनन्दरूप परिणति होती है। इन सिद्ध, अरिहन्त को पूर्ण आनन्द की परिणति हो गयी। समझ में आया? ऐसा कहकर अपनी भी बात करते हैं कि मुनियों को भी अतीन्द्रिय आनन्द की परिणतिरूप उनकी भूमिका के योग्य... उनकी भूमिका के योग्य अतीन्द्रिय आनन्द की सुखरूप परिणति है। अरिहन्त को पूर्ण है, ऐसा कहकर यह कहेंगे कि वह जयवन्त है। समझ में आया? पहले सबमें यह डाला था न?

पाप को (मार-डालने के लिये) जो यमरूप हैं,... पाप-कीनाश-रूप:.. **कीनाश** का अर्थ यम। **कीनाश** अर्थात् यम। नयी भाषा है। इन संस्कृतवालों को अधिक

(खबर पड़े)। पाप और पाप का वह **कीनाश** है। पाप को नाश करने को यमरूप है। यम है यम। आहाहा! **पाप को (मार-डालने के लिये) जो यमरूप हैं,...** यम है यम। आहाहा! भगवान आत्मा भी, पाप शब्द से पुण्य और पाप के विकल्प का नाश करने के लिए यम समान भगवान आत्मा है। समझ में आया? ऐसा भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ आश्रय लिया, कहते हैं कि वह तो विकार के लिए यम समान हैं। उसे विकार में सुखबुद्धि उड़ गयी है। इसलिए विकार का नाश करने के लिए आत्मा का स्वभाव यमरूप है। आहाहा! समझ में आया?

भव के परिताप का जिन्होंने नाश किया है,... हत-भव-परितापः भव का परिताप। देखो, विशिष्टता! चार गति का परिताप। चारों गतियों में आकुलता है, ऐसा कहते हैं। स्वर्ग में भी परिताप ही है, वहाँ सुख है नहीं। जमभाई! ये पैसेवाले सब सुखी कहलाते हैं या नहीं? तुमको वहाँ सेठसाहेब, सेठसाहेब करते हैं या नहीं? उसमें कुछ सुख होता होगा या नहीं? आकुलता होती है, कहते हैं। चारों गतियों में आकुलता है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

मुमुक्षु : सेठसाहेब न कहे तो आकुलता होती है। (कहे तो) मजा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : माना है, ऐसा कहते हैं। वहाँ धूल की कल्पना उठी है। ऐई! मलूकचन्दभाई! क्या कहा यह? आकुलता है। **हत-भव-परितापः** भव का। वापस अकेला ताप नहीं, परिताप। आहाहा! चार गति के भव में अग्नि सुलगती है, कहते हैं। समझ में आया? यह सेठाई और राजा और देव, वे सब अग्नि से, कषाय से सुलगते हैं। वे **भव-परितापः** उसको **हत** जिन्होंने नष्ट कर दिया है। भाषा तो ऐसी ही आवे न! उपदेश में क्या आवे?

मुमुक्षु : जहाँ-तहाँ मारने की ही अकेली बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार डालता है। वह कहे, ऐसा नहीं लेना। अब व्यर्थ का। परमात्मप्रकाश में नहीं कहा? अरे! अनादि के... हों! बन्धु का मारनेवाला तू है, ऐसा कहा। बाबूभाई! आत्मा को ऐसा कहा। 'तेरा बन्धव साथ में रहनेवाला उसे तूने मार डाला।' बेचारा साथ में रहता था। जहाँ जाए, वहाँ साथ का साथ। रास्ते में भी साथ। एक समय दूर न रहे, ऐसे तो वे मित्र थे। भगवान आत्मा अपने स्वरूप में आरूढ़ हुआ, कर्म का नाश

हो गया। उस कर्म के नाश का उपाय एक स्वरूप में आरूढ़ हुआ, वह एक ही बात है। यह क्रिया कर्म के नाश की है।

भव के परिताप का जिन्होंने नाश किया है,... आकुलता। ये पैसेवाले दिखायी दें, स्त्री, पुत्र, परिवारी दिखायी दें। सब भव के परिताप हैं। समझ में आया? यह वीतराग पर्याय परिणमन में कोई राग या निमित्त या शरीर अनुकूल था, इसलिए परिणमी है, ऐसा नहीं है। आत्मा में अनादि का वीतरागभाव जो है, वह उसे परिणमने में अनुकूल था।

भूपति जिनके श्रीपद में... यह श्री की व्याख्या की है। **(महिमायुक्त पुनीत चरणों में)...** ऐसा। अकेले चरण नहीं। महिमायुक्त पुनीत चरणों-यह श्री की व्याख्या की है। **नमते हैं,...** आहाहा! इन्द्र आकर (नमते हैं)। यहाँ तो भूपति, भूपति है। **तत्त्वविज्ञानः तक्षः** वहाँ आया न? नहीं, वह तो ९८वें में। **स जयति जितकोपः** जिन्होंने कोप को तो जीता है। द्वेष का अंश नहीं। कुछ प्रतिकूलता हो तो अरुचि हो, यह बात भगवान को रही नहीं। **जितकोपः प्रह्वविद्वत्कलापः विद्वानों का समुदाय जिनके आगे नत हो जाता...** आहाहा! बड़े विद्वान और पण्डित, उनके झुण्ड ऐसे अरिहन्त पद, सर्वज्ञ पद में विद्वान नत हो जाते हैं। ऐसे विद्वान अर्थात् ज्ञान की दशा चाहे जितनी प्रगट हुई है, वह सब स्वभाव में नम पड़ते हैं। समझ में आया? ऐसा यह अरिहन्त पद है, ऐसा वह यह आत्मपद है।

वे (श्री पद्मप्रभनाथ)जयवन्त हैं। है? **स जयति** जयवन्त हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसे भगवान मानो साक्षात् समवसरण में विराजते हों। जिनके पद में नमते हैं, उसका अर्थ वहाँ कहाँ भगवान को पैर है अभी? सिद्ध में तो पैर नहीं, परन्तु यहाँ थे, ऐसा मानो नजर में तैरते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा भी वर्तमान में पूर्ण विद्यमान आनन्द का तत्त्व दृष्टि में तैरता है, जयवन्त वर्तता है। वह वस्तु जयवन्त वर्तती है। यहाँ भगवान जयवन्त वर्तते हैं। यहाँ जिसने दृष्टि और ज्ञान से पूरी चीज़ को पकड़ा है, वह वस्तु जयवन्त वर्तती है। आहाहा! यह ९८वाँ श्लोक हुआ।

श्लोक-९९

(मालिनी)

जयति विदितमोक्षः पद्मपत्रायताक्षः,
प्रजित-दुरितकक्षः प्रास्तकन्दर्पपक्षः।
पदयुग-नत-यक्षः तत्त्व-विज्ञान-दक्षः,
कृतबुधजनशिक्षः प्रोक्तनिर्वाणदीक्षः ।।९९।।

(हरिगीतिका)

सप्रसिद्ध जिनका मोक्ष अम्बुज पत्रवत् जो दीर्घ हैं।
पापकक्षा के विजेता काम सेना विजित हैं॥
यक्ष जिनके चरण में, विज्ञान तत्त्व सुदक्ष हैं।
बुधजन-गुरू, निर्वाण दीक्षा उचारक जयवंत हैं॥

[श्लोकार्थः—] प्रसिद्ध जिनका मोक्ष है, पद्मपत्र (कमल के पत्ते) जैसे दीर्घ जिनके नेत्र हैं, पापकक्षा[१] को जिन्होंने जीत लिया है, कामदेव के पक्ष का जिन्होंने नाश किया है, यक्ष जिनके चरणयुगल में नमते हैं, तत्त्वविज्ञान में जो दक्ष (चतुर) हैं, बुधजनों को जिन्होंने शिक्षा (सीख) दी है और निर्वाणदीक्षा का जिन्होंने उच्चारण किया है, वे (श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र) जयवन्त हैं।

श्लोक-९९ पर प्रवचन

९९ श्लोक। **जयति विदितमोक्षः पद्मपत्रायताक्षः** सब 'क्ष' है। उसमें 'स' थे। उसमें 'ज' थे। पहले में 'त्र' थे। पहले में सब 'त्र' थे।

जयति विदितगात्रः स्मेरनीरेजनेत्रः

दूसरे में 'ज' थे। सब 'ज'।

१. कक्षा = भूमिका; श्रेणी; स्थिति।

स्मरकरिमृगराजः पुण्यकञ्जाह्विराजः

तीसरे में सब 'प' थे।

जितरतिपतिचापः सर्वविद्याप्रदीपः

'त्र', 'ज', 'प' और अब 'क्ष'।

जयति विदितमोक्षः पद्मपत्रायताक्षः,
प्रजित-दुरितकक्षः प्रास्तकन्दर्पपक्षः।
पदयुग-नत-यक्षः तत्त्व-विज्ञान-दक्षः,
कृतबुधजनशिक्षः प्रोक्तनिर्वाणदीक्षः ।।९९।।

श्लोकार्थ : प्रसिद्ध जिनका मोक्ष है,... सिद्धं प्रसिद्धं नहीं आता। क्या कहलाता है?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। सिद्ध समूह तो प्रसिद्ध है। आहाहा! प्रसिद्ध सिद्धसमूह, आता है न? अनन्त सिद्ध प्रसिद्ध हैं। ऐसे अरिहन्तों का मोक्ष प्रसिद्ध है। आहाहा! ऐसे आत्मा का मोक्ष प्रसिद्ध है। मोक्ष हो, वह प्रसिद्ध है। संसार-फंसार आत्मा को रहे नहीं। उसे आत्मा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? संसारवाला आत्मा मानना, वह तो मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। संसारवाला आत्मा मानना... संसार अर्थात् विकल्प और आस्रव। आस्रवसहित मानना, वह तो तत्त्व की दृष्टि विपरीत है।

प्रसिद्ध जिनका मोक्ष है,... आहाहा! जो आत्मा में प्रसिद्ध मोक्ष मुक्तस्वरूप पड़ा ही है। उसे पर्याय में प्रसिद्ध मोक्ष हो, वह कोई विशेषता, नवीनता नहीं है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब एक ही है। दोनों शुद्ध ही है। समयसार में आया था। ....कारण और कार्य दोनों शुद्ध ही हैं। शुद्ध हैं, इसका अर्थ कि है ही ऐसा। त्रिकाल है और त्रिकाल है, उसका जिसने आश्रय लिया, उसे शुद्धता ही पूर्ण प्रगट होगी, वह शुद्ध ही है। अशुद्धता रहेगी ही नहीं। ऐसा सूक्ष्म है। बाबूभाई! बाहर में एक यात्रा कर आये, इसलिए निपट गया, ऐसा नहीं है। यह आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा की... चौदश की करे, पूर्णिमा की न

करे। फिर कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, समय-समय यात्रा करनेवाला आत्मा है।

प्रसिद्ध जिनका मोक्ष है,... आहाहा! शुद्धस्वरूप परमानन्द की विद्यमानता जहाँ दृष्टि में आयी, (वहाँ) प्रसिद्ध मोक्ष है। प्रसिद्ध मोक्ष है... प्रसिद्ध मोक्ष है। प्रतीति में ऐसी प्रसिद्ध पर्याय में मोक्ष होगा, होगा, और होगा ही - ऐसा आत्मा है। जिसमें संसार की गन्ध नहीं रहती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसने आत्मा पकड़ा और आत्मा जाना अथवा आत्मा है, ऐसा माना, है वह माना कब कहलाये? पूरा परिपूर्ण भगवान है, ऐसा जिसने सम्यग्दर्शन में माना, उसे प्रसिद्ध मोक्ष है। उसे भगवान को पूछने नहीं जाना पड़ता कि भाई! मेरा मोक्ष कब होगा? मोक्ष ही है। अरिहन्त को भावमोक्ष प्रसिद्ध हो गया है। कहते हैं।

पद्मपत्र (कमल के पत्ते) जैसे दीर्घ जिनके नेत्र हैं,... कमल के पत्र। पुण्यवन्त प्राणी को यहाँ से वहाँ शेड ऐसे चलती होती है। कमल-कमल होता है न? शेड चलती है। ऐसे कमल का फूल हो, ऐसी उसकी आँख होती है। तीर्थंकर तो पूर्ण पुण्य के धनी हैं न? अन्दर में पहले गुण की बात की। दूसरे, उनके शरीर की व्याख्या की। **जैसे दीर्घ जिनके नेत्र हैं,...** अन्दर केवलज्ञान के दीर्घ नेत्र हो गये हैं, बाहर में भी आँख ऐसी होती है। चक्रवर्ती, बलदेव, उसमें तीर्थंकर का तो क्या कहना?

पापकक्षा को जिन्होंने जीत लिया है,... पाप शब्द से पुण्य और पाप दोनों। उनका पहलू जीत लिया है, ऐसा कहते हैं। संसार का पहलू पुण्य-पाप है। उस पहलू में जो चढ़ गया था, उससे हट गया है। आहाहा! अनादि से शुभ और अशुभ के पक्ष में चढ़ा था, वह मिथ्यात्व और संसार था। आहाहा! उस पापकक्षा की **भूमिका; श्रेणी; स्थिति** देखो! कक्षा है न, कक्षा? एक ओर का पहलू, ऐसे। संसार का पहलू जिसने जीत लिया है, स्वभाव के पक्ष में चढ़ गया है। आहाहा! समझ में आया? जैसे अरिहन्त हैं, वैसा ही तू है - वापिस ऐसा।

तत्त्वानुशासन में आता है न? तत्त्वानुशासन न? ऐसा कि अरिहन्त का ध्यान का नहीं आता? ऐसा कहते हैं अरिहन्त का ध्यान करे तो तू व्यर्थ है। तू कहाँ अरिहन्त है। सुन न अब। हम अभी अरिहन्त हैं क्योंकि अरिहन्तस्वरूप आत्मा है, उसका ध्यान करके शान्ति मिलती है, इसलिए साक्षात् अरिहन्त बिना कहाँ से मिले? इसलिए हम अन्दर

अरिहन्त ही हैं। तत्त्वानुशासन में ऐसा श्लोक है। समझ में आया? ऐसा कि अरिहन्त तो अभी नहीं हैं और तुम कौन से अरिहन्त का ध्यान करते हो? तुम्हारा मिथ्या है। तुझे खबर नहीं। हम अन्दर अरिहन्त ही हैं। आहाहा! उसका ध्यान करने से शान्ति आती है, उसका अर्थ कि मिथ्या अरिहन्त का ध्यान करने से शान्ति आयेगी? आहाहा! पाँच पद ही हम हैं। आहाहा! समझ में आया? शान्तिभाई! गजब बात ऐसी! बहुत से कहते हैं छोटे मुँह बड़ी बातें। उसे खबर नहीं है। यहाँ छोटा मुँह है ही नहीं। काम कक्षा, पापकक्षा।

संसार के पहलू से हट गया आत्मा है, उसे आत्मा कहते हैं। भगवान संसार के पहलू से हट गया है। ऐसे आत्मा भी संसार के पहलू से हट गया है, उसे आत्मा कहते हैं। संसार के पक्ष में खड़ा है, वह अनात्मा है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन में संसार का पक्ष छूट गया है। संसार से मुक्त है। व्यवहार से मुक्त कहो या संसार से मुक्त कहो, सब एक ही है। सम्यग्दृष्टि—धर्म की पहली सीढ़ी, व्यवहार से मुक्त। व्यवहार अर्थात् विकल्प से मुक्त है। उसे संसार का पक्ष छूट गया है। आहाहा! पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्दरूपी मुक्तस्वभाव के पक्ष में गया, तब संसारपक्ष छूटा, तब उसने आत्मा के अनुभव को माना, ऐसा कहने में आता है।

प्रजित-दुरितकक्षः.. **दुरित** का अर्थ पाप किया है। ऐसा। **प्रजित-दुरितकक्षः प्रास्तकन्दर्पपक्षः कामदेव के पक्ष का जिन्होंने नाश किया है,...** वह कक्षा थी। यह पक्ष है। **कामदेव के पक्ष का जिन्होंने नाश किया है,...** 'क्षः' है न? 'क्षः'। **प्रजित-दुरितकक्षः प्रास्तकन्दर्पपक्षः पदयुग-नत-यक्षः** इसमें चार शब्द हैं। **यक्ष जिनके चरणयुगल में नमते हैं,...** चँवर ढोलते हैं न? इन्द्र, यक्ष समवसरण में चौंसठ चँवर (ढोलते हैं)। हवा अच्छी आवे, इसलिए होगा? भगवान को गर्मी नहीं होती। पंखे नहीं डालते? पंखे। उन्हें क्या है? भगवान तो अनन्त आनन्द में विराजते हैं। यह तो भक्तिवाले को दिखाने का भाव है। चँवर ढोले, चँवर। यहाँ ढोलते हैं न? पंखा। कितनों के हाथ में पुस्तक होवे तो उसे लेकर हवा करते हैं। बहुत गर्मी लगती है न? छोटी पुस्तक हाथ में होवे तो उससे हवा करते हैं। यह ठीक कहलायेगा? बहुत गर्मी लगती होवे तो क्या करना? सहन करना। कागज का पंखा। कितने ही लड़कों के हाथ में छोटी पुस्तक होवे तो (पंखा करते हैं)। ऐसा नहीं किया जाता। शास्त्र की असातना कहलाती है। आहाहा! **यक्ष जिनके चरणयुगल में नमते हैं,...** यह तो पुण्य का कारण है और इन्द्र-देव आकर

चँवर ढोलते हैं। इसमें उन्हें क्या है ? उन्हें हवा लगे और गर्मी होती होगी, ऐसा होगा ? वे तो अतीन्द्रिय आनन्द में विराजमान हैं। ये तो भक्त भक्ति के भाव से यह करते हैं।

तत्त्व-विज्ञान-दक्षः तत्त्वविज्ञान में जो दक्ष (चतुर) हैं,... अरिहन्त, सर्वज्ञ परमात्मा। जगत की जितनी विद्याएँ और ज्ञान हैं, उन सबमें प्रवीण हैं। ऐसा कहे, यह अमुक और मन्त्र को जाने, अमुक तन्त्र को जाने, अमुक ऐसी विद्या जाने। उन सबमें भगवान प्रवीण है। कुछ करते नहीं, हों! देखो! **तत्त्वविज्ञान में जो दक्ष (चतुर) हैं,...** इतनी ही बात ली है न ?

कृतबुधजनशिक्षः बुधजनों को जिन्होंने शिक्षा (सीख) दी है... कहो, अज्ञानी को, बड़थोल को नहीं। ऐसा कहते हैं। जो पात्र रूढा जैसा है, उसे भगवान ने शिक्षा दी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसे शिक्षा लागू पड़ती है, उसे शिक्षा दी है, ऐसा कहते हैं। **बुधजनों को जिन्होंने शिक्षा (सीख) दी है...** बुध तो समझे हुए हैं। समझे हुए को कहते हैं, उन्हें समझाया है। अनसमझ को समझाते नहीं, ऐई!

प्रोक्तनिर्वाणदीक्षः अन्तिम बोल। **निर्वाणदीक्षा का जिन्होंने उच्चारण किया है,...** जिन्होंने निर्वाण की ही प्राप्ति होने की ऐसी ही दीक्षा उन्होंने ली है। जिस दीक्षा में मोक्ष हो, ऐसी दीक्षा का उच्चारण किया है। आहाहा! स्वर्ग मिले या अमुक मिले, ऐसी दीक्षा नहीं-ऐसा कहते हैं। कहते हैं या नहीं ? दो घड़ी दीक्षा ले तो उसे स्वर्ग कपाल में, ऐसा सुना था। (विक्रम संवत्) २००० के वर्ष में। वहाँ राजकोट। मनसुखभाई की लड़की दीक्षा लेनेवाली थी न। चिमन के भाई मनसुखभाई की दो लड़कियों की तब दीक्षा थी। राजकोट में २००० के वर्ष में ऐसी सब बातें आती थीं। वहाँ त्रम्बकभाई को लड़कियाँ मिलने आयी थीं। उनके रिश्तेदार होते हैं न! त्रम्बकलाल सेठ, नानालालभाई के बहनोई। वहाँ लड़कियाँ आयी थीं। हम वहाँ वाँकानेर थे। बातें करते थे कि यहाँ तो महाराज ऐसा कहते हैं कि यदि दो घड़ी साधुपना आवे तो उसके कपाल में स्वर्ग तो अवश्य। धूल में भी नहीं, अब सुन न! आहाहा!

यहाँ तो **निर्वाणदीक्षा का जिन्होंने उच्चारण किया है,...** स्वर्ग मिलेगा, यह बात दीक्षा के स्वभाव में है ही नहीं। आहाहा! ऐसी (स्वर्ग की) लालच देकर मूंढते हैं। ऐई! स्वर्ग मिलेगा। वहाँ फिर ऐई.. खाने-पीने का ऐसा नहीं होता, परन्तु उसे हजार वर्ष में इच्छा

होती है। परन्तु उसमें क्या हुआ, धूल ? वह सब भव तो परिताप वाले हैं, ऐसा कहा। क्लेश और आकुलता वाले भव हैं। तुझे उस भव में जाना है ? यह दीक्षा का फल ? दीक्षा तो उसे कहते हैं, जिससे निर्वाण प्राप्त हो। आहाहा! **निर्वाणदीक्षा का जिन्होंने उच्चारण किया है,...** लो।

वे (श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र) जयवन्त हैं। हमारे तो कहते हैं कि वे जयवन्त वर्तते हैं। अर्थात् कि मोक्ष का कारण ऐसी दीक्षा हमारे जयवन्त वर्तती है। ऐसा पद्मप्रभमलधारि मुनि स्वयं कहते हैं। मोक्ष का कारण ऐसी जो दीक्षा, (वह) हमारे जयवन्त वर्तती है। उसके फल में हमें मुक्ति ही आयेगी। आहाहा! पुण्य करेगा तो गति तो सुधरेगी। पाप में जाए उसकी अपेक्षा। कहते हैं, तेरी श्रद्धा और ज्ञान ही सब मिथ्या है। जिसके फल में स्वर्ग माँगे, उसके कारण में पुण्य होता है और पुण्य की इच्छावाला मिथ्यादृष्टि है।

धर्मी को तो आत्मा के स्वभाव की भावना है। उसका नाम दीक्षा। सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित स्वरूप की रमणता की दीक्षा जिसने ग्रहण की है। वह दीक्षा निर्वाण का कारण है। आहाहा! उस दीक्षा को दीक्षा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। ऐई! जयन्तीभाई! यह तो कहते हैं, अब पाप से तो छूटें। चूल्हे के, अग्नि के और छहकाय के आरम्भ से (तो छूटे) ऐसी बात करे और कहीं तो बेचारे को हो। क्या धूल होगा। संसार है, वह का वह है। आहाहा! जिससे निर्वाण, केवल मुक्ति-ऐसी जो दीक्षा अर्थात् आत्मा के स्वभाव का आचरण, शुद्ध का आचरण, वही दीक्षा है, हों! पंच महाव्रत के विकल्प-फिकल्प, वह दीक्षा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब मार्ग! दिगम्बर सन्तों की कथनी भी... कड़क।

निर्वाणदीक्षा का जिन्होंने उच्चारण किया है, वे (श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र) जयवन्त हैं। प्रभु! वे जयवन्त हैं। आहाहा! हमारा भाव भी मोक्ष का कारण जयवन्त है। हमारे जो परिणाम, वीतरागभाव जो मोक्ष का कारण, वह जयवन्त है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? यह पंचम काल के मुनि हैं। और कोई कहे कि यह तो सब चौथे काल की बातें हैं। काल हो या फाल, वस्तु कुछ बदलती होगी ? देखो न! आचार्य-मुनि स्वयं... आहाहा! हमारी दीक्षा तो निर्वाण का कारण है। ऐसी दीक्षा हमें आयी है। भगवान को भी यही दीक्षा उच्चारण की थी और यह दीक्षा समझायी थी। समझ में आया ? जिस दीक्षा में कारण होकर मोक्ष हो, ऐसी दीक्षा भगवान ने समझायी थी, ऐसा कहते हैं। बाबूभाई!

आओ, मुंडाओ यहाँ साधु होओ, तुम्हें यहाँ स्वर्ग मिलेगा, ऐसे ललचाये नहीं थे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शिक्षा दी है, ऐसा कहा, हों! दीक्षा की ऐसी शिक्षा, जिससे मुक्ति हो, ऐसी दीक्षा—ऐसी समझायी थी। यह तो आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान के आश्रय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र, निर्विकारी, निर्विकल्प परिणति, वह मोक्ष का कारण है। ऐसा भगवान ने समझाया था कि तेरी दीक्षा से तुझे स्वर्ग मिलेगा और सेठाई मिलेगी, यह दीक्षा का फल ही नहीं है। आहाहा!

निर्वाणदीक्षा का जिन्होंने उच्चारण किया है,... निर्वाण का कारण ऐसी दीक्षा को जिन्होंने समझाया है, ऐसा कहते हैं। **वे (श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र) जयवन्त हैं।** लो। उसमें-अर्थ में लिया। यहाँ ऐसा लिया। कितना है वह? ९९। श्लोक कितना? ७१ गाथा। अन्तिम। दक्ष (चतुर) भव्य जीवों को शिक्षा... तथा जिन्होंने निर्वाण का कारण मुनिदीक्षा का स्वरूप कहा है। ऐसा भाई शीतलप्रसाद ने पहले अर्थ किया था न? निर्वाण का कारण मुनिदीक्षा, मोक्ष का कारण मुनिदीक्षा, वीतरागी परिणति, ऐसी जीवों को शिक्षा प्रदान की है। आहाहा! उसका नाम दीक्षा और उसका नाम दीक्षा का फल मोक्ष। यह तो गप्पा-गप्प मारे। क्रिया का ठिकाना नहीं और पंच महाव्रत पालते हैं और उससे मुक्ति होगी। धूल में भी नहीं होगी। लो, ९९वाँ श्लोक हुआ। १०० वाँ श्लोक बाकी रह गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)